IJNRD.ORG ISSN : 2456-4184
INTERNATIONAL JOURNAL OF NOVEL RESEARCH AND DEVELOPMENT (IJNRD) | IJNRD.ORG
An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

रस की विलक्षणता

चन्द्र किशोर

असि. प्रोफेसर, संस्कृत विभाग,
ब्रह्मावर्त पी. जी. कालेज, मन्धना,
कानपुर नगर, उ. प्र. ।
Email: drck.kn10@gmail.com

सारांश

आचार्य अभिनवगुप्त के अनुसार काव्यार्थ का अधिकारी सहृदय सामाजिक होता है। उनका कहना है कि सहृदय को काव्य में वर्णित विभावादि की साधारण प्रतीति से विलक्षण साक्षात्कारात्मक अनुभूति होती है। यह अनुभूति सामाजिकों को स्थायी भावों के आधार पर समान रूप से भावित होती है और यह आनन्दानुभूति सामान्य जीवन के अनुभवों से विलक्षण होती है। मानस की यह साक्षात्कारात्मक अनुभूति आनन्द स्वरूप होती है। इसमें रत्यादि भावों का भान भी होता है। इसलिए यह काव्यात्मक अनुभूति लौकिक, मिथ्या, अनिर्वचनीय, लौकिक–सदृश या उसके आरोपादि रूप से विलक्षण प्रतीति रूप है। आचार्य अभिनवगुप्त के अनुसार यह साक्षात्कारात्मक अनुभूति ही सकलविध्न विनिर्मुक्त चमत्कार, रसन, आस्वादन , भोग, समापत्ति, लय, विश्रान्ति आदि नामों से अभिहित की जाती है।

प्रस्तावना

आचार्य अभिनवगुप्त ने अपनी व्याख्या में रससूत्र के अनेक व्याख्याकारों के मतों को प्रस्तुत कर उनका खण्डन किया है। इस पर पूर्वपक्षी की ओर से यह प्रश्न होता है कि आपने तो सभी मतों का खण्डन कर डाला है तो आप ही बतायें कि ऐसी स्थिति में रसतत्त्व कहाँ रहेगा ? इस पर आचार्य अभिनवगुप्त कहते हैं कि रसतत्त्व कहीं रहे या न रहे, इस विषय में हम क्या कर सकते हैं? उनका अभिप्राय रस का खण्डन करना नहीं है अपितु संशोधन करना है। उनका कहना है कि मैंने सभी व्याख्याकारों के मत की आलोचना की है किन्तु इससे रसतत्त्व का खण्डन नहीं होता है, क्योंकि रसतत्त्व तो आम्नाय से सिद्ध है, वेद प्रमाण से प्रतिपादित है। मत–मतान्तरों की आलोचना से आम्नाय सिद्ध अर्थ का खण्डन नहीं होता, अपितु परिमार्जित होकर उसका प्रामाणिक स्वरूप निखर कर सामने आ जाता है। तो फिर उसका परिशुद्ध स्वरूप क्या है? इस पर कहते हैं कि

आचार्य भरत ने स्वयं उस परिशुद्ध तत्त्व को कह दिया है, हमे कोई नई बात नहीं कहनी है। जैसा कि आचार्य भरत ने कहा है कि काव्य के अर्थों को प्रकाशित करते हैं, और यही काव्यार्थ रस है। काव्य का यही अर्थ सारभूत तत्त्व है। यही काव्य की आत्मा है और यह लौकिक अन्य वस्तुओं से विलक्षण है।

मुख्यशब्द

काव्यार्थ, सहृदय–सामाजिक, विलक्षण, साक्षात्कारात्मक, अनुभूति, आनन्दानुभूति, रसानुभूति, अध्यवसाय, संकल्प, स्मृति, अनिर्वचनीय, चमत्कार, रसन, आस्वादन, भोग, समापत्ति , लय, विश्रान्ति।

अध्ययन का उद्देश्य

सहृदय–सामाजिक को रस की विलक्षणता के बारे में ज्ञान कराना।

लोक–व्यवहार में कार्य, कारण और सहकारी रूप अनुमापक हेतुओं के देखने पर स्थायीभाव रूप अन्य की चित्तवृत्ति अनुमान के अभ्यास की कुशलता से इस समय उन्हीं उद्यान, कटाक्ष, अवलोकन आदि अनुभावों के द्वारा लौकिक कारणत्त्व आदि की भूमि का अतिक्रमण कर विभावन, अनुभावन और उपरंजकत्त्व रूप को प्राप्त, इसलिए लौकिक विभावादि नामों से कहे जाने वाले, कारण आदि रूप पूर्व संस्कारों के उपजीवन के प्रकाशन के लिए विभावादि नाम से निर्दिष्ट और भावाध्याय में भी जिनके स्वरूप एंव भेद कहे जायेगें। इस प्रकार सामाजिक की बुद्धि में गुण और प्रधानभाव से सम्यग योग (उचित संयोग) अथवा एकाग्रता को प्राप्त करने वाले विभावादि के द्वारा अलौकिक एवं निर्विध्न संवेदनरूप चर्वणा (आस्वाद) की विषयता को प्राप्त रत्यादि रूप अर्थ, जिसका चर्वणा ही एकमात्र सार है, विद्यमान स्वरूप वाला नहीं अर्थात् आस्वादन काल में ही विद्यामान और चर्वणा के अतिरिक्त काल में न रहने वाला स्थायीभाव से विलक्षण रूप 'रस' होता है–

तत्र लोक व्यवहारे कार्यकारणसहचारात्मक लिङ्गदर्शने स्थाय्यात्मपरचित्त वृत्त्यानुमानाभ्यासपाटवादधुनातैरेवोद्यानकटाक्षवीक्षादिभिलौकिकी कारणत्त्वादिभुवमतिक्रान्त ौर्विभावनानुभावना समुपरंजकत्त्वमात्रप्राणैः, अतएवालौकिक विभावादिव्यपदेशभाग्भिः प्राच्यकारणादिरूपसंस्कारोपजीवनस्थापनायविभावादिनामधेय व्यपदेश्यैर्भावाध्यायेऽपिवक्ष्यमाण स्वरूपभेदैर्गुणप्रधानतापर्यायेण सामाजिकधियि सम्यग्योगं सम्बन्धमैकाग्र यवाऽऽसादितवद्भिरलौकिनिर्विध्नसंवदेनात्मकचर्वणागोचरतां नीतोऽर्थश्चर्व्यमाणतैकसारो न तु सिद्धस्वभावः तात्कालिक एव न तु चर्वणातिरिक्त कालावलम्बीस्थायिविलक्षण एव रसः।[1]

1.भरत (2015)। नाट्यशास्त्र–भाग–2। गुप्त, अभिनव (नाट्यशास्त्रः 'अभिनवभारती' टीका)। द्विवेदी पारसनाथ (सम्पादक)। वाराणसी, भारत, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय। षष्ठोऽध्याय, पृ–72

और जैसा कि श्रीशंकुक आदि आचार्यों ने कहा था 'विभावादि के द्वारा प्रतीत कराया गया स्थायीभाव ही रस्यभाव होने से 'रस' कहा जाता है, यह ठीक नहीं है। इस प्रकार तो लौकिक रत्यादि स्थायीभाव भी रस क्यों नहीं होगा? श्रीशंकुक के अनुसार विभावादि के द्वारा अनुमेय स्थायी भाव रस है, यह कथन भी ठीक नहीं है। क्योंकि तब तो लौकिक स्थायीभाव भी रस कहलाने लगेगा, क्योंकि जब विद्यमान न रहने पर भी रत्यादि की रसनीयता हो जाती है, तो लौकिक पुरुष में जहाँ वास्तव में रत्यादि स्थायीभाव विद्यमान है, वहाँ रत्यादि की रसनीयता क्यों न मानी जाय? इसलिए लौकिक स्थायीभाव की प्रतीति अनुमिति कहनी चाहिए, न कि रस रूप । इसलिए आचार्य भरत ने 'रससूत्र' में स्थायीभाव का ग्रहण नहीं किया है। यदि वहाँ स्थायीभाव का ग्रहण किया जाता, तो वह शल्य के समान कष्टदायक होता । केवल औचित्य के कारण ही ऐसा कहा जाता है कि 'स्थायीभाव' रस रूप है–

ननु यथा शङ्कुकादिभिरभ्यधीत, 'स्थाय्येवविभावादिप्रत्ययो रस्यमानत्वाद्रस उच्यते।' इति । एवं हि लौकिकोऽपि किं न रसः। असतोऽपि हि यत्र रसनीयता स्यात्तत्र वस्तुसतः कथं न भविष्यति। तेन स्थायिप्रतीतिरनुमितिरूपा वाच्या, न रसः। अतएव सूत्रे स्थायीग्रहणं न कृतम् तत्प्रत्युत शल्यभूतं स्यात्। केवलमौचित्यादेवमुच्यते स्थायी रसीभूत इति। [2]

उस स्थायीभावगत कारणादिरूप से प्रसिद्ध इस समय चर्वणा अर्थात् रसास्वादन के उपयोगी होने के कारण विभावादि रूप से अवलम्बन होने से स्थायीभाव के रसत्त्व होने का यही औचित्य है। तब लौकिक चित्तवृत्ति के अनुमान से रसत्त्व माना जा सकता है। इसलिए अलौकिक चमत्कार रूप रसास्वाद स्मृति, अनुमान तथा लौकिक अनुभूतियों से विलक्षण है, भिन्न है–

औचित्यं तु तत्स्थायिगतत्त्वेन कारणादितया प्रसिद्धानामधुना चर्वणोपयोगितया विभावादित्वावलम्बनात्। तथा हि लौकिक चित्तवृत्त्यनुमाने का रसता। तेनालौकिचमत्कारात्मा रसास्वादः स्मृत्यनुमानलौकिकसंवेदन विलक्षण एव। [3]

और लौकिक अनुमान से संस्कृत सामाजिक प्रमदा आदि को तटस्थ रूप में स्वीकार नहीं करता, अपितु हृदयसंवादात्मक सहृदयता के बल से पूर्व रसास्वाद के अंकुर रूप से अनुमान, स्मृति आदि सोपान परम्परा पर आरोहण किये बिना तन्मयीभाव के योग्य चर्वणा (आस्वाद) के प्राण रूप विभावादि को स्वीकार करता है और वह चर्वणा पूर्व में किसी अन्य प्रमाण से स्थित नहीं है, जिससे उसे स्मृति कहा जाये। इसमें लौकिक प्रत्यक्षादि प्रमाणों का व्यापार भी नहीं होता है, अपितु अलौकिक विभावादि के संयोग बल से यह चर्वणा प्राप्त होती है और वह प्रत्यक्ष, अनुमान, आगम आदि लौकिक प्रमाणों से रत्यादि के बोध (ज्ञान) से तथा योगि प्रत्यक्ष से जन्म (उत्पन्न) तटस्थ पर संवेदन रूप ज्ञान से एवं समस्त विषयों के प्रति रागशून्य (वैराग्ययुक्त) शुद्ध परमयोगी में रहने वाले शुद्ध,

---

2.वही, षष्ठोऽध्याय, पृ–73
3.वही, षष्ठोऽध्याय, पृ–73

एवधन आत्मानन्द के अनुभव से विलक्षण होता है। क्योंकि इसमें यथायोग्य अर्जन आदि विघ्नों के आ जाने से, तटस्थ एवं अस्पष्टता की स्थिति में विषयावेश की विवशता के कारण सौन्दर्य का विरह (आभाव) हो जाता है–

तथाहि–लौकिकेनानुमानेन संस्कृतः प्रमदादि ताटस्थ्येन प्रतिपद्यते। अपितु तु हृदयसंवादात्मकसहृदयत्वबलात्पूर्णीभविष्यद्रसास्वादाङ्कुरीभावेनानुमानस्मृत्यादिसोपानमनारुह्यैव तन्मयीभावोचितचर्वणाप्राणतया। न च सा चर्वणा प्राङमानान्तरात् येना धुना स्मृतिःस्यात्। न चात्र लौकिकप्रत्यक्षादिप्रमाणव्यापारः। किन्त्वलौकिकविभावादिसंयोगबलोपनतैवेयं चर्वणा। सा च प्रत्यक्षानुमानादि लौकिकप्रमाणजनितरत्याद्यवबोधतः तथा योगिप्रत्यक्षजनिततटस्थ परसंवित्तिज्ञानात्सकलवैषयिकोपरागशून्य शुद्ध परयोगिगतस्वात्मानदेकधनानुभवाच्च विशिष्यते। एतेषां यथायोगमर्जनादिविघ्नान्तरोदयात्ताटस्थ्येऽस्फुटत्त्व विषयावेशवैवश्यकृतसौन्दर्यविरहात्। [4]

यहाँ तो अपने में रहने के नियम के सम्भव न होने से विषयावेश की विवशता नहीं होती, अपने का उसमें अनुप्रवेश होने से और परगतत्त्व के नियम का अभाव होने से तटस्थ एवं अस्पष्ट प्रतीति (अनुभूति) नही होती, उन विभावादि के साधारणीकरण हो जाने और उचित रूप से प्रबुद्ध अपनी रत्यादि वासना के आवेश के कारण अन्य (अर्जनादि) विघ्नों की सम्भावनाएं नही रहती, यह अनेक बार कह चुका हूँ–

अत्र तु स्वात्मैकगतत्त्वनियमासंभवात् न विषयावेशवैवश्यम् स्वानुप्रवेशात् परत्परगतत्त्वनियमाभावात् न ताटस्थ्यास्फुटत्त्वं तद्विभावादिसाधारण्यवशसंप्रबुद्धोचित– निजरत्यादिवासनावेशवशाच्च न विघ्नान्तरादीनां सम्भव इत्यवोचाम बहुशः। [5]

इसलिए विभावादि रसनिष्पत्ति के हेतु (कारण) नहीं हैं, क्योंकि ज्ञान के न होने पर भी रसनिष्पत्ति की सम्भावना बनी रहती है। विभावादि के ज्ञान के बिना रस की निष्पत्ति नही देखी जाती –

अतएव विभावादयो न निष्पत्तिहेतवो रहस्य। तद्बोधापगमेऽपि रस संभवप्रसङ्गात्। [6]

और विभावादि रस के ज्ञापक हेतु भी नहीं हैं। जिससे प्रमाणों में गणना की जाय। क्योंकि पहले से सिद्ध प्रभेयभूत रस की सत्ता नहीं है, फिर ये विभावादि क्या हैं? इस प्रकार चर्वणा (आस्वाद) के उपयोगी यह विभावादि व्यवहार अलौकिक है–

नापि ज्ञाप्तिहेतवः येन प्रमाणमध्ये पतेयुः। सिद्धस्य कस्यचित्प्रभेयभूतस्य रसस्याभावात्। किं तर्ह्येतद्धि विभावादय इति। अलौकिक एवायं चर्वणोपयोगी विभावादि व्यवहारः। [7]

अब प्रश्न होता है कि इस प्रकार का पदार्थ अन्यत्र कहाँ देखा है? इस पर कहते हैं कि –यह तो रस की अलौकित्त्व सिद्धि में हमारे लिए भूषण है। जैसे–पानक रस का स्वाद उसके अंगभूत गुड़–मिर्च आदि में कहाँ देखा जाता है? यह दोनों में समान है–

क्वान्यत्रेत्थं दृष्टिमिति चेद्भूषणमेतद्स्माकमलौकिकत्त्वसिद्धौ। पानक रसास्वादोऽपि किं गुडमरीचादिषु दृष्ट इति समानमेतत्। [8]

---

4. वही, षष्ठोऽध्याय, पृ–74
5. वही, षष्ठोऽध्याय, पृ–75
6. वही, षष्ठोऽध्याय, पृ–75
7. वही, षष्ठोऽध्याय, पृ–75
8. वही, षष्ठोऽध्याय, पृ–75

अब पुनः प्रश्न उठता है कि इस प्रकार रस प्रमेय नहीं हो सकता, यह कथन ठीक हो सकता है। क्योंकि उसका प्राणतत्त्व रसमयता है, प्रमेयरूप नहीं है। तो रससूत्र में 'निष्पत्ति' क्यों कहा गया? उत्तर यहाँ रस की निष्पत्ति नहीं कही गई, अपितु उसके विषयभूत आस्वाद (रसना) की निष्पत्ति कही गई है और उसके निष्पत्ति से यदि केवल उस रसना पर आश्रित रस की निष्पत्ति कही जाती है, तो इसमें कोई दोष नहीं है–

नन्वेवं रसोऽप्रमेयः स्यादेवम्। युक्तं भवितुमर्हति। रस्यतैकप्राणो ह्यसौ न प्रमेयादिस्वभावः। तर्हि सूत्रे निष्पत्तिरिति कथम ्? नेयं रसस्य, अपितु तद्विषय परसनायाः तन्निष्पत्त्या तु यदि तदेकायत्तजीवितस्य रसस्य निष्पत्तिरुच्यते न कश्चिदत्र दोषः। [9]

वह रसना (आस्वाद) न तो ज्ञापक हेतु रूप प्रमाण व्यापार है और न कारक व्यापार है और स्वसंवेदन रूप होने के कारण उसे आप्रामाणिक नहीं कहा जा सकता । अतः रसना (चर्वणा) बोध रूप ही है। किन्तु विभावादि उपायों के लौकिक विलक्षणता के कारण अन्य लौकिक प्रमाणों (ज्ञानों) से विलक्षण है, भिन्न है। क्योंकि विभावादि के संयोग से रसना (आस्वादन) की निष्पत्ति होती है। इसलिए उस प्रकार आस्वाद (रसना) का विषयभूत लोकोत्तर अर्थ 'रस' है, यह सूत्र का तात्पर्य है–

सा च रसना न प्रमाणव्यापारो न कारकव्यापारः। स्वयं तु ना प्रामाणिकः, स्वसंवेदन– सिद्धत्त्वात्। रसना च बोधरूपैव। किन्तुबोधान्तरेभ्यो लौकिकेभ्यो विलक्षणैव। उपायानां विभावादीनां लौकिकवैलक्षण्यात्। तेन विभावादि संयोगद्रसना यतो निष्पद्यतेऽतस्तथा विधरसनागोचरो लोकोत्तरोऽर्थो रस इति तात्पर्यं सूत्रस्य। [10]

पण्डितराज जगन्नाथ रस को शुद्ध चैतन्य स्वरूप तथा अलौकिक मानते हुए कहते हैं कि–यद्यपि ब्रह्मानन्द से भिन्न तथा अलौकिक कारणों से उत्पन्न होने के कारण यह पूर्वोक्त चित्तवृत्ति विशेषात्मक आनन्द अर्थात् सुखविशेष लौकिक अवश्य है, तथापि अन्य–स्रक, चन्दन, वनितादि उपभोगजन्य लौकिक सुखों के समान नहीं अपितु विलक्षण है, क्योंकि अन्य लौकिक सुख अन्तः करण की वृत्तियों से युक्त चैतन्य स्वरूप रहते हैं अर्थात् उन सुखों के अनुभव करते समय चैतन्य का अन्तःकरण की वृत्तियों के साथ सम्बन्ध रहता है और यह रसरूप आनन्द अन्तःकरण की वृत्तियों से युक्त चैतन्य स्वरूप नहीं अपितु शुद्ध चैतन्य स्वरूप है अर्थात् रसात्मक आनन्द का अनुभव करते समय चित्तवृत्ति की आनन्द रूप में ही परिणति हो जाती है। अतः वह चित्तवृत्ति उस आनन्द का अवच्छेदक (इयत्ता रहित) ही रहता है, यही अन्य लौकिक सुखों की अपेक्षा इस रसात्मक सुख से विलक्षणता है–

आनन्दों ह्ययं न लौकिकसुखान्तर साधारणः अनन्त ≈ करणवृत्ति रूपत्त्वात्। [11]

अतः निष्कर्षतः कह सकते हैं कि वास्तव में जहाँ रत्यादि स्थायीभाव विद्यमान हो, वहाँ रत्यादि की रसनीयता मानी जाय। इसलिए स्थायीभाव की प्रतीति अनुमिति कहनी चाहिए, न कि रस रूप। आचार्य भरत ने रससूत्र में स्थायीभाव का ग्रहण नहीं किया, केवल औचित्य के कारण ऐसा कहा जाता है कि–स्थायीभाव रसरूप है और उस स्थायीभावगत कारणादिरूप से प्रसिद्ध इस समय चर्वणा अर्थात् रसास्वादन के उपयोगी होने के कारण विभावादि रूप से अवलम्बन होने से स्थायीभाव के रसत्त्व का यही औचित्य है। तब लौकिक चित्तवृत्ति के अनुमान से रसत्त्व माना जा सकता है। इसलिए अलौकिक चमत्कार रूप रसास्वाद स्मृति, अनुमान तथा लौकिक अनुभूतियों से विलक्षण है, भिन्न है।

9.वही, षष्ठोऽध्याय, पृ–75
10.वही, षष्ठोऽध्याय, पृ–75
11.जगन्नाथ (2016)। रसगंगाधर। झा, मदनमोहन (रसगंगाधरः संस्कृत हिन्दी व्याख्योपेत)। वाराणसी, भारत, चौखम्बा सुरभारती। प्रथम–आनन, रस–प्रकरण, पृ–95